

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 39 — अक्रूरजी का दिव्य दर्शन

5 October 2026



मध्याह्न में कालिन्दी के जल में खड़े अक्रूरजी एक परिचित प्रार्थना के साथ नेत्र मूँदते हैं और खोलते ही सहस्रफण अनन्त की कुण्डली पर विराजमान सम्पूर्ण लोकों के स्वामी को निहारते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह उनतालीसवाँ अध्याय हमें व्रज के आँगनों से कालिन्दी के तट तक ले चलता है — नन्दजी ने गोपों को मथुरा की तैयारी का आदेश कैसे दिया, व्रज की गोपियों ने विरह में कैसी अनिद्रित रात बिताई, और प्रातःकाल रथ हाँककर ले जाने वाले उस भक्त को दोपहर में नदी के भीतर ऐसा दर्शन कैसे मिला जिसे किसी राजा का कार्य कभी मोल नहीं ले सकता।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

- अध्याय: 39 (उनचालीसवाँ अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: अक्रूरजी का दिव्य दर्शन
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: ब्रज, मथुरा का मार्ग, और कालिन्दी (यमुना) का हृद
- केंद्रीय विषय: राम-कृष्ण के प्रस्थान पर ब्रज का विरह, और अनन्त शेष पर विराजमान भगवान् का अक्रूरजी को दर्शन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 39, श्लोक 1-57
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पूर्व अध्याय का संदर्भ

कंस के भेजे हुए अक्रूरजी मथुरा से ब्रज की ओर सारे मार्ग श्रीकृष्ण के दर्शन के आनन्द का ही ध्यान करते हुए चले थे। सन्ध्या को गोकुल पहुँचकर वे दोनों भाइयों के चरणों पर गिर पड़े, और नन्दजी ने उनका स्नेहपूर्वक स्वागत किया।

श्रीकृष्ण का सत्कार और अक्रूरजी का सन्देश

पलंग पर सुखपूर्वक बैठे और बलराम तथा कृष्ण से अत्यन्त सम्मानित अक्रूरजी ने पाया कि मार्ग में सँजोई हुई उनकी प्रत्येक कामना एक ही सन्ध्या में पूर्ण हो गई। शुकदेवजी राजा परीक्षित से इसका मर्म कहते हैं।

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।

तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥ २ ॥

kim alabhyam bhagavati prasanne śrī-niketane tathāpi tat-parā rājan na hi vāñchanti kiñcana

अर्थ: श्री के निवास भगवान् के प्रसन्न होने पर अप्राप्य क्या रह जाता है? फिर भी, हे राजन्, जो केवल उन्हीं के परायण हैं वे कुछ भी नहीं चाहते। (स्कन्ध 10, अध्याय 39, श्लोक 2)

सायंकाल का भोजन हो चुकने पर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ने अपने अतिथि से पूछा कि कंस उनके स्वजनों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है और आगे क्या करना चाहता है। भानजे के स्नेह से उन्होंने चाचाजी की कुशल-यात्रा और उनके स्वजनों की कुशल की आशा प्रकट की — किन्तु जब तक कंस फलता-फूलता है, जो मामा कहलाकर भी हमारे कुल के लिए रोग के समान है, तब तक ऐसा कुशल-प्रश्न किस काम का? हमारे कारण हमारे श्रेष्ठ माता-पिता ने कितना कष्ट सहा: हमारे ही कारण उनके अन्य पुत्र मारे गए और उन्होंने स्वयं बन्धन स्वीकार किया। आज आपके रूप में बहुप्रतीक्षित स्वजन-दर्शन हमें प्राप्त हुआ है; अब अपने आने का प्रयोजन कहिए।

तब अक्रूरजी ने सब कुछ कह सुनाया — यदुवंशियों के प्रति कंस का पुराना वैर, वसुदेवजी के प्राण लेने का उसका प्रयत्न, जिस कार्य से वे भेजे गए थे, और आनकदुन्दुभि से भगवान् के जन्म के विषय में नारदजी ने राजा को जो बताया था। दोनों भाई यह सुनकर खुलकर हँस पड़े, और उन्होंने पिता नन्दजी को कंस की आज्ञा कह सुनाई।

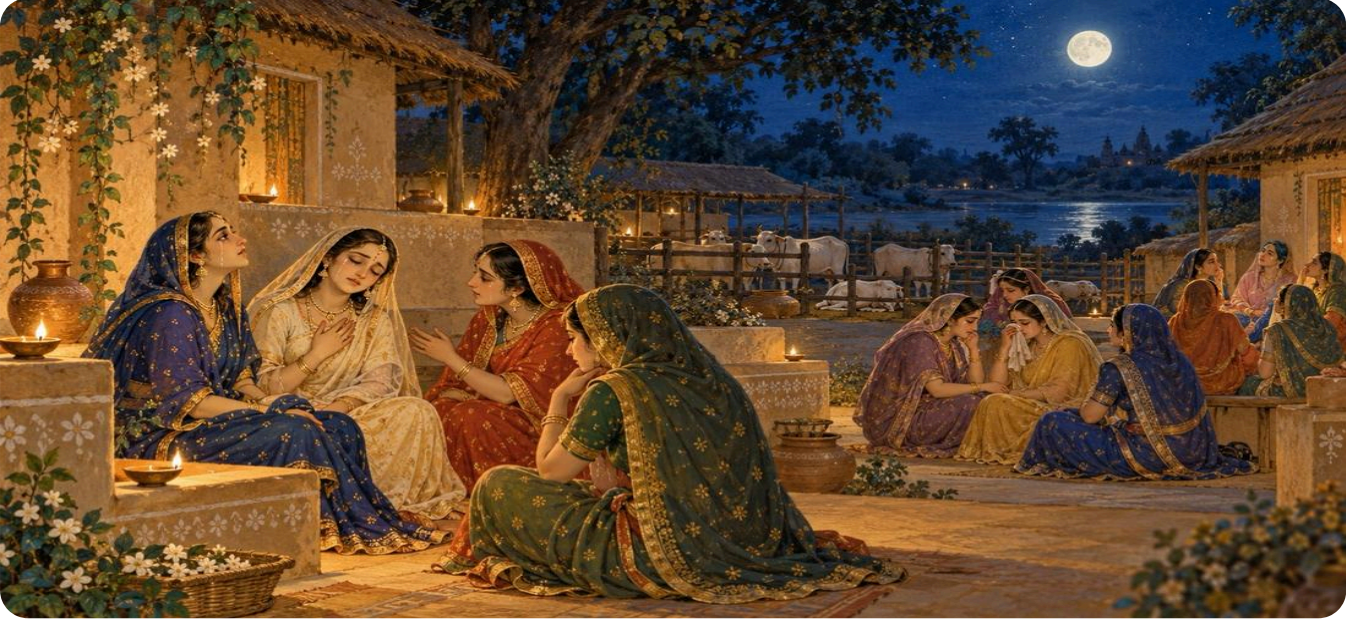


सायंकाल का भोजन हो जाने पर श्रीकृष्ण अपने अतिथि से पूछते हैं कि कंस स्वजनों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है, और अक्रूरजी दोनों भाइयों के सामने राजा की सारी योजना और अपने आने का कारण रख देते हैं।

नन्दजी की घोषणा और ब्रज की विरह-रात्रि

नन्दजी ने तत्काल गोपों को आदेश दिया: गौओं का सारा उत्पाद एकत्र करो, भेंट साथ ले लो, छकड़े तैयार करो। उन्होंने कहा कि कल हम मथुरा चलेंगे, राजा को दूध, दही और घी भेंट करेंगे और धनुष-यज्ञ का महोत्सव देखेंगे, क्योंकि सारा राज्य वहीं जा रहा है। उनके प्रहरी ने यह घोषणा ब्रज के कोने-कोने में करा दी।

गोपियों के लिए यह समाचार वज्रपात के समान था। यह सुनकर कि अक्रूरजी राम और कृष्ण को ले जाने आए हैं, वे हृदय से व्यथित हो उठीं। किन्हीं के मुख की कान्ति पीड़ा की गरम साँसों से मुरझा गई; किन्हीं के आँचल खिसक गए, चूड़ियाँ ढीली पड़ गईं, केशों की गाँठें खुल गईं। कुछ अन्य गोपियाँ, जिनकी समस्त इन्द्रिय-वृत्तियाँ उन्हीं के अखण्ड ध्यान में लीन हो गई थीं, इस लोक को जान ही न सकीं — मानो वे आत्मलोक को चली गई हों। और कुछ उनके उन वचनों को स्मरण कर मूर्छित हो गईं जो प्रेमभरी मुसकान के साथ कहे गए थे और हृदय के तारों को छू जाते थे। उनकी मनोहर चाल, चितवन, शोकहारी विनोद और अद्भुत लीलाओं का स्मरण करती हुई वे टोलियों में एकत्र होकर अश्रुपूर्ण मुख से सारी रात बातें करती रहीं।



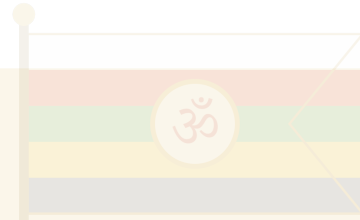
रथ चलने से पहले की सारी रात ब्रज की गोपियाँ छोटी-छोटी टोलियों में बैठी रहती हैं — उनकी चितवन, उनके विनोद और उनकी अद्भुत लीलाओं को याद करती हुई, अश्रुओं से भीगे मुख लिए।

ब्रजांगनाओं का विलाप

गोप्य ऊचुः

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।

तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥



aho vidhātas tava na kvacid dayā saṁyojya maitryā praṇayena dehinaḥ tāṁś cākṛtārthān viyunaṅkṣy apārthakam vikrīḍitam te 'rbhaka-ceṣṭitam yathā

अर्थ: गोपियों ने कहा — अहो विधाता! तुममें कहीं दया नहीं है, क्योंकि देहधारियों को मैत्री और प्रणय से जोड़कर, उनकी कामना पूरी हुए बिना ही तुम उन्हें अलग कर देते हो। तुम्हारी यह क्रीड़ा बालक की चेष्टा के समान निरर्थक है। (स्कन्ध 10, अध्याय 39, श्लोक 19)

उन्होंने आगे कहा — तुमने ही हमें मुकुन्द का वह मुख दिखाया था, सुन्दर कपोलों वाला, काली घुँघराली अलकों से घिरा, शोक हर लेने वाली मन्द मुसकान से मनोहर — और अब तुम्हीं उसे हमारी दृष्टि से ओझल कर रहे हो; यह कर्म तुम्हारे योग्य नहीं। तुम निर्दय हो, और 'अक्रूर' अर्थात् 'जो क्रूर नहीं' — इस नाम की आड़ में अज्ञानी के समान तुम वही नेत्र हमसे छीन रहे हो जो तुमने ही दिए थे, जिनसे हमने श्रीकृष्ण के एक-एक अंग में समाई तुम्हारी सारी रचना-कुशलता देखी थी।

फिर उनका शोक अपने प्रियतम और अपनी ही असहायता की ओर मुड़ गया। वे बोलीं — जिनकी मित्रता क्षणभर की है वे हमारी ओर देखते तक नहीं, जबकि हमने घर, स्वजन, पुत्र और पति तक छोड़कर उनकी सेवा की। धन्य होगा मथुरा की ललनाओं का प्रभात, जो नगर में निर्भय प्रवेश करते हुए उनके अमृतमय मुख को जी भरकर निहारेंगी; आज दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि और सात्वत, तथा मार्ग में उन्हें देखने वाले सभी, नेत्रों का उत्सव मनाएँगे। तब हम गँवार ग्रामवासिनियों के पास वे कैसे लौटेंगे? ऐसे कठोर हृदय का नाम 'अक्रूर' कभी नहीं होना चाहिए था, जो प्राणों से प्यारे को बिना सान्त्वना-वचन दिए परिचित पथ से परे लिए जा रहा है। वे रथ पर बैठ चुके हैं, गोप शीघ्रता करा रहे हैं, बड़े-बूढ़े

उदासीन हैं, और आज विधि भी हमारे विरुद्ध है। चलो, प्रेम से जाकर उन्हें रोक लें। इस विरह को हम कैसे पार करेंगी — हम, जिनकी अनेक रातें रासमण्डल में एक क्षण-सी बीत गई — अथवा उनके बिना कैसे जिएँगी, जो सन्ध्या को बलरामजी और गोपबालकों के साथ बंसी बजाते ब्रज लौटते थे, जिनकी अलकें गौओं के खुरों की धूल से धूसर रहती थीं?

रथ का मथुरा की ओर प्रस्थान

ऐसा कहती हुई और सारी लज्जा त्यागकर ब्रजांगनाएँ ‘हे गोपाल! हे कृष्ण! हे माधव!’ पुकारती हुई फूट-फूटकर रोने लगीं। किन्तु सूर्य उदय हो चुका था, और अक्रूरजी प्रातःकालीन सन्ध्या-वन्दन आदि से निवृत्त होकर उनके विलाप के बीच ही रथ को मथुरा के मार्ग पर ले चले। नन्दजी और गोप भेंटों तथा गोरस से भरे घड़े लेकर छकड़ों में पीछे-पीछे चले, और गोपियाँ भी अपने प्रियतम के पीछे कुछ दूर जाकर ठहर गई, उनके किसी सन्देश की प्रतीक्षा में।

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ।

सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥

tās tathā tapyatīr vīkṣya sva-prasthāne yadūttamaḥ sāntvayām āsa sa-premair āyāsyā iti dautyakaiḥ

अर्थ: अपने प्रस्थान पर उन्हें इस प्रकार सन्तप्त देखकर यदुश्रेष्ठ ने दूत के द्वारा प्रेमपूर्ण सन्देश भेजकर उन्हें यह कहते हुए सान्त्वना दी — ‘मैं आऊँगा!’ (स्कन्ध 10, अध्याय 39, श्लोक 35)

जब तक रथ की ध्वजा और उसकी उड़ती धूल दिखाई देती रही, वे वहीं खड़ी रहीं, अपना मन आगे भेजे हुए, चित्र में लिखी आकृतियों के समान निश्चल। फिर गोविन्द के लौटने की आशा न रहने पर वे लौट पड़ीं; और उनके वचन से आश्चस्त होकर अपने दिन-रात प्रियतम की लीलाओं का गान करते हुए बिताने लगीं।



सूर्योदय होते ही अक्रूरजी दोनों भाइयों को रथ पर बिठाकर मथुरा की ओर चल पड़ते हैं; नन्दजी के छकड़े भेंटें लिए पीछे-पीछे चलते हैं, और गोपियाँ मार्ग पर चित्र-सी खड़ी रह जाती हैं, जब तक पहियों की धूल तक ओझल नहीं हो जाती।

कालिन्दी के तट पर

वायु के वेग वाला रथ भगवान् को बलरामजी और अक्रूरजी सहित पापनाशिनी कालिन्दी के तट पर ले आया। वहाँ श्रीकृष्ण ने हाथ-पैर धोए और मणि-सी हरी, मधुर जल का पान किया; फिर जहाँ रथ खड़ा था उस वृक्ष-समूह के पास जाकर बलरामजी के साथ पुनः रथ पर बैठ गए। अक्रूरजी दोनों भाइयों को वहाँ बैठाकर और उनसे अनुमति लेकर यमुना के उस हृद पर गए जो अनन्त-तीर्थ कहलाता है, और विधिपूर्वक मध्याह्न-स्नान करने लगे।

निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम् ।

तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥

nimajjya tasmin salile japan brahma sanātanam tāv eva dadṛśe 'krūro rāma-kṛṣṇau samanvitau

अर्थ: उस जल में डुबकी लगाकर सनातन वेद (गायत्री) का जप करते हुए अक्रूरजी ने उन्हीं दोनों — बलराम और कृष्ण — को वहाँ साथ बैठे हुए देखा। (स्कन्ध 10, अध्याय 39, श्लोक 41)

उन्होंने सोचा — आनकदुन्दुभि के ये दोनों पुत्र, जो रथ पर बैठे हैं, यहाँ कैसे हो सकते हैं? वे बाहर निकले और दोनों को रथ पर ठीक वैसे ही बैठे देखा; तब यह सन्देह करते हुए कि जल में जो देखा वह मिथ्या तो नहीं, उन्होंने फिर डुबकी लगाई।



अनन्त-तीर्थ नामक हृद में गायत्री का जप करते अकूरजी यह देखकर चकित रह जाते हैं कि बलराम और श्रीकृष्ण जल के भीतर साथ बैठे हैं — वही दोनों, जिन्हें वे क्षणभर पहले वृक्षों के नीचे रथ पर छोड़कर आए थे।

अनन्त शेष पर विराजमान भगवान्

इस बार जो दृश्य सामने आया वह और भी महान् था: सिद्ध, चारण, गन्धर्व और असुर गरदन झुकाए जिनकी स्तुति कर रहे थे, वे सहस्रशीर्ष नागराज — सहस्र फणों पर सहस्र मुकुट, नीलाम्बर धारण किए, कमल-नाल के समान श्वेत, शिखरों सहित रजत कैलास के समान स्थित। उन्हीं की कुण्डली पर उन्होंने स्वयं परम पुरुष को देखा।

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।

पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥

tasyotsaṅge ghana-śyāmaṁ pīta-kauśeya-vāsasam puruṣaṁ catur-bhujam śāntaṁ padma-patrāruṇekṣaṇam

अर्थ: उस नाग की गोद में उन्होंने मेघ के समान श्यामवर्ण, पीत कौशेय वस्त्र धारण किए, चतुर्भुज, शान्त और कमलदल के समान अरुण नेत्रों वाले परम पुरुष को देखा। (स्कन्ध 10, अध्याय 39, श्लोक 46)

अंग-अंग से अकूरजी उस सौन्दर्य को पीते रहे — मुसकान भरा प्रसन्न मुख, लम्बी पुष्ट भुजाएँ, श्री का निवास वक्षःस्थल, और नखों की अरुण आभा से दीप्त चरणकमल। भगवान् अमूल्य रत्नों के मुकुट, बाजूबन्द, कंगन, करधनी, यज्ञोपवीत, हार, कुण्डल और नूपुरों से सुशोभित थे; हाथों में कमल, शंख, चक्र और गदा; वक्ष पर श्रीवत्स और कौस्तुभ तथा गले में वनमाला। सुनन्द, नन्द आदि पार्षद गुणगान कर रहे थे; सनकादि चारों भाई पीछे, दाहिनी ओर ब्रह्मा और शिव देवप्रमुखों सहित, बाईं ओर मरीचि आदि नौ ब्रह्मा-पुत्र, सामने प्रह्लाद, नारद तथा उपरिचर वसु; और श्री, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति और माया मूर्तिमान् होकर सेवा कर रही थीं।

अक्रूरजी का प्रणाम और स्तुति का आरम्भ

विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ।

हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥

गिरा गद्गदयास्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ।

प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥

vilokya su-bhṛśaṁ prīto bhaktyā paramayā yutaḥ hṛṣyat-tanūruho bhāva-pariklinnātma-locanaḥ girā gadgadayāstauṣīt sattvam ālambya sātватаḥ praṇamya mūrdhnāvahitaḥ kṛtāñjali-puṭaḥ śanaīḥ

अर्थ: उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न और परम भक्ति से युक्त, रोमांचित शरीर तथा प्रेम से भीगे मन और नेत्रों वाले सात्वतवंशी अक्रूरजी ने धैर्य धारण कर सिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से धीरे-धीरे स्तुति आरम्भ की। (स्कन्ध 10, अध्याय 39, श्लोक 56-57)

इस प्रकार वह स्तुति आरम्भ हुई — रुकती हुई, उस हृदय से जिसे अपनी आशा से कहीं अधिक मिल चुका था।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रसन्न भगवान् कुछ नहीं रोकते, और उनका भक्त कुछ नहीं माँगता। श्री के निवास भगवान् के प्रसन्न होने पर कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता — फिर भी जो अनन्यभाव से उन्हीं के हैं वे कुछ भी नहीं चाहते। अक्रूरजी को एक ही सन्ध्या में वह सब मिल गया जिसकी उन्होंने आशा की थी, और उन्होंने उसमें से कुछ भी नहीं माँगा।
2. प्रेम की कसौटी विरह है, और प्रभु का एक वचन पर्याप्त है। गोपियाँ विधाता को, दूत को, यहाँ तक कि अपने प्रियतम को भी उलाहना देती हैं; किन्तु हर उलाहना यही स्वीकार करता है कि वे उनसे अलग जी नहीं सकतीं। प्रभु कोई भेंट या सफाई नहीं भेजते, केवल यह वचन कि वे आएँगे — और वही एक वचन रोती हुई गोपियों को गायिका बना देता है।
3. रथ पर विराजमान प्रभु ही अनन्त के स्वामी हैं। ठीक उसी घड़ी जब श्रीकृष्ण मथुरा-मार्ग के एक पथिक से अधिक कुछ नहीं जान पड़ते, जल खुलकर अक्रूरजी को उन्हीं दोनों भाइयों को अनन्त की कुण्डली पर दिखा देता है — चतुर्भुज, ब्रह्मा और शिव से, सनकादि, प्रह्लाद और नारद से पूजित। अक्रूरजी की दृष्टि के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बदला। यह दर्शन ठीक विदा की घड़ी में दिया जाता है, जिससे भक्त जान ले कि रथ पर बैठे नन्दनन्दन और अनन्त पर शयन करने वाले परम पुरुष एक ही हैं, और ऐसे प्रभु वस्तुतः कभी दूर नहीं जाते।
4. नित्य साधना ही द्वार है। यह प्रकाश किसी मन्दिर में नहीं, अपितु साधारण मध्याह्न-स्नान के बीच मिलता है, जब अक्रूरजी जल में सनातन मन्त्र का जप कर रहे थे। श्रद्धा से निभाई गई नित्य उपासना ही वह स्थान है जहाँ प्रभु अपने को प्रकट करना चुनते हैं।

एक भाक्तेमय चिन्तन

यहाँ दो प्रकार का दर्शन है, और दोनों प्रेम से ही जन्मे हैं। ब्रज की गोपियाँ रथ को तब तक देखती रहती हैं जब तक ध्वजा और धूल तक लुप्त नहीं हो जाती, और फिर मार्ग पर भित्ति-चित्र की आकृतियों-सी खड़ी रह जाती हैं — कुछ न देखती हुई और केवल उन्हीं को देखती हुई। अक्रूरजी सन्ध्या-वन्दन के लिए नदी में उतरते हैं और वहीं देवताओं तथा ऋषियों से सेवित सम्पूर्ण लोकों के स्वामी को पा लेते हैं। एक ओर वियोग है, दूसरी ओर साक्षात्कार; किन्तु मूल में दोनों एक हैं: हृदय इतना श्रीकृष्ण को चला गया कि नेत्र उसके पीछे चलने के सिवा कुछ कर ही नहीं सकते। हम सोचते हैं कि दर्शन का अर्थ कहीं जाना है — सही तीर्थ, सही घड़ी। अक्रूरजी हमें धीरे से सुधारते हैं: वे एक अत्याचारी के कार्य पर थे, एक साधारण यात्रा के बीच में, और तभी जल उनके लिए खुल गया।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज जो एक उपासना आप पहले से करते हैं — स्नान, दीपक, या जप के कुछ शान्त क्षण — उसे धीरे-धीरे, यह जानते हुए कीजिए कि प्रभु उसमें उपस्थित हैं। कालिन्दी के जल में खड़े अक्रूरजी का स्मरण कीजिए, और यह भी कि जो दूर रथ पर बैठे जान पड़ते थे वे उस जल में भी सदा वहीं थे। फिर हाथ जोड़कर यह प्रार्थना अर्पित कीजिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यह अध्याय एक विदाई को दर्शन में बदल देता है। ब्रज इस समाचार के साथ जागता है कि उसके दोनों लाल ले जाए जाएँगे; उसकी स्त्रियाँ आँसुओं की रात और मार्ग पर निश्चलता की सुबह बिताती हैं; और रथ हाँकने वाला पुरुष ऐसी भक्ति लिए चलता है जिसका भेजने वाले राजा को अनुमान तक न था। मध्याह्न में, यमुना के एक मोड़ पर, उस भक्ति का उत्तर मिलता है — किसी वरदान से नहीं, अपितु अनन्त के सहस्र फणों पर विराजमान स्वयं भगवान् से। हम भी अपनी नित्य उपासना ऐसी श्रद्धा से निभाएँ कि हमारे जीवन का साधारण जल भी हमें उनका स्वरूप दिखाने लगे।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), उनचालीसवाँ अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-39-akruras-vision-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

